भोजपुरी लोक साहित्य एवं संस्कृति

लोक-जीवन में गाय-भैंस

शास्त्रों में गाय के साथ वैतरणी पार करने का उल्लेख मिलता है, भैंस के साथ नहीं। वैदिक काल से लेकर अब तक के सम्पूर्ण साहित्य में भैंस को एक दुधारु पशु से अधिक महत्व नहीं मिला। इसके विपरीत गाय को स्वर्ग की सीढ़ी-'गावः स्वर्गस्य सोपान', शांति का प्रतीक - 'गो शांति मा वदे', लोक की प्रतिष्ठा इत्यादि बताया गया है। लोक जीवन में एक भैंस का महत्व एवं उपयोगिता उसके प्रचुर मलाईयुक्त गाढ़ा दूध के कारण है अन्यथा उसमें ऐसी कोई विशेषता नहीं, जिससे कि उसे गाय के समक्ष अथवा उससे थोड़ा नीचे भी स्थान दिया जा सके। गाय स्वयं में नाना प्रकार से उपयोगी है ही, उसका बछड़ा भी भारतीय कृषक जीवन का अविभाज्य अंग है। भैंस का पड़वा भी कुछ मायनों में उपयोगी रहा है किन्तु बछड़े की तरह नहीं। विचित्रता यह है कि लोक साहित्य या लोकभाषिक परम्परा में भैंस पर जितनी कहावतें गढ़ी गयीं, उतनी गाय पर नहीं। लेकिन ये कहावतें भैंस की विशिष्टता बताने के लिए नहीं बल्कि उसके विभिन्न स्वभावों के माध्यम से मानव प्रवृत्तियों पर कटाक्ष करने के उद्देश्य से गढ़ी गयीं। कार्टूनिस्टों को कालेधन एवं कालाबाजारी पर व्यंग्य करना हुआ तो उसके लिए भैंस को ही चुना। अल्हड़, आलसी तथा मंदबुद्धि लोगों के लिए जहाँ 'भैंस के आगे बीन बजाई, भैंस रही पगुराई', कहावत बनी, वहीं हठी एवं कुतर्की लोगों के लिए 'ये भइंस आपन पोंकल नेवारऽ, तहरा दूध से बाज आवत बानीं' कहावत। निरक्षरों के लिए 'करिया अछर भइंस बराबर', लाख समझाने बुझाने या उपदेश करने के बावजूद अपनी ही मति एवं गति पर आरूढ़ रहने वालों के लिए , 'धोवल भइंस पाँक में', भुक्कड़ों के लिए 'अघाइलों भंइस पांच काठा', जैसी कहावतें प्रचलित हुईं। कहने की आवश्यकता नहीं कि लोकोपयोगी होकर भी भैंस को उचित प्रतिष्ठा नहीं मिली। फूहड़ औरत के लिए भी कोई प्रतीक सूझी तो 'भैंस' और आकेंठ खाकर बेफिक्र पड़े रहने वालों के लिए सूझा तो 'भैंसा' ही। यह पशुजाति (भैंस) हर प्रकार से निरीह रही-'खेत खाय पड़िया, भइंसी कऽ मुंह झकझोरल जाय'। व्यावसायिक दृष्टि से यद्यपि भैंस ही उपयोगी मानी जाती है, किन्तु गांव-देहात में कहावत है-'खेत ना जोतीं राड़ी, भैंस ना बेसाहीं पाड़ी'।

भोजपुरी में एक शब्द है - 'हीरल', जो भैंस के लिए ही आता है - 'हीरल-हीरल भइंसिया पानी में'। गर्दन ऊँचा करके पांक पानी में वह जहाँ बैठ गयी,फिर वहाँ से जल्दी हट नहीं सकती। नदी, नाला, गड्ढा-गढ़ही में भैंस ऐसे धधाकर घुसती है, जैसे उससे उसकी जन्म-जन्मान्तर की प्रीति हो। किन्तु गाय का स्वभाव यहाँ बिल्कुल विपरीत है। मैदान में चरती हुई गाय एवं भैंस को देखिये, वर्षा शुरूहोते ही गाय भागने लगती है, किन्तु भैंस डटी रहती है। यही कारण है कि श्रीकृष्ण को अपनी गौवों को वर्षा से बचाने के लिए गोवर्धन पहाड़ी की गुफा में शरण लेनी पड़ी।

भैंस में उपरोक्त विलक्षणताओं को देखकर ही हमारे पूर्वजों ने गाय को वरीयता प्रदान की होगी। पशुपालन एवं कृषि-संस्कृति के प्रमुख अधिष्ठाता जन-नायक भगवान श्रीकृष्ण ने भैंस की बजाय गो पालन को महत्व दिया और गोपाल कहलाये। वैदिक युग में प्रत्येक आर्य संतान, चाहे वह किसी भी कार्य में लगी हो, प्रायः गो-पालक थी। यद्यपि उस समय भेंड़, बकरी, भैंस आदि पशुओं को भी पाला जाता था, परन्तु भौतिक महत्व के साथ जो सांस्कृतिक महत्व गाय को मिला वह अन्य किसी पशु को नहीं। चिन्तन-मनन करने वाले ऋषि सैकड़ों, हजारों की संख्या में गायें पालते थे। वे स्वयं भी चरवाही करते और अपने शिष्यों से भी कराते थे। यज्ञों में ऋत्विजों को दक्षिणा स्वरूप गाय भी देने का विधान था। वेदों में 'गो' शब्द अनेक बार 'दक्षिणा' के अर्थ में भी आया है। ऋषि लोग प्रार्थना करते समय ईश्वर से गाय माँगना नहीं भूलते थे। राजा लोग प्रसन्न होकर ब्राह्मणों को सैकड़ों गायें दान में देते थे। लेन-देन, क्रय-विक्रय में सिक्कों की जगह गाय को भी व्यवहृत किया जाता था। घर में गाय की नित्य पूजा होती थी। उसके भोजन कर लेने के उपरान्त ही उसके पालक लोग भोजन करते थे। अधिकांश हिन्दू परिवार आज भी अपने भोजन का एक अंश अपनी गौ को खिलाने के उपरान्त ही स्वयं खाते हैं। वैदिक आर्यगण गाय को 'अघ्न्या' (न मारने योग्य) मानते थे और उसे 'देवी' शब्द से संबोधित करते थे। आज भी एक कुलीन हिन्दू परिवार गौ को 'गऊमाता' ही कहता है। गाय के स्वस्थ बछड़े को आँगन में उछलते देख एक सद्गृहस्थ का मन उसी प्रकार आह्लादित हो उठता है, जैसे अपने शिशु को किलकारियाँ भरते देखकर। एक सनातनी गाय के अभाव में उसी प्रकार उदास रहता है जैसे संतान के अभाव में एक गृहस्थ। गाय के प्रति अनुराग देखना हो तो प्रेमचन्द के 'गोदान' उपन्यास के मुख्य पात्र होरी के मन में भी झाँका जा सकता है। 'अग्निपुराण' में एक जगह कहा गया है कि जिस घर में गाय दुःखित रहती है, वह घर नरक हो जाता है।

Content given by BHU, Varanasi

Copyright © Banaras Hindu University- All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

भोजपुरी लोक साहित्य एवं संस्कृति

गाय में तमाम विशेषताएँ हैं। वह विनम्रता, साधुता, स्वच्छता एवं सात्विकता की प्रतीक है। हिन्दू परिवार कन्यादान के साथ गोदान भी करता है। गाय का हमारे जीवन में आदि से अन्त तक महत्व है। माँ जब शिशु को जन्म देती है, तब छठियार में बछिये के गोबर की ही पीड़िया लगती है। बहनें अपने भाई की रक्षा के लिए जब भैयादूज पर्व करती हैं, तब गाय के गोबर की ही पीड़िया लगाती हैं। गोवर्धनपूजा गाय-बैल के गोबर से ही होती है। सभी प्रकार के पूजा-पाठ, विवाह-संस्कार, यहाँ तक कि श्राद्ध में भी गाय के गोबर का बहुत महत्व है। पंचगव्य-गो-मूत्र, गो-दुग्ध, गो-दधि, गो-घृत तथा गोबर के बगैर हमारा कोई भी मांगलिक अनुष्ठान पूरा नहीं होता। अग्निपुराण का सुझाव है कि तीन दिन तक क्रमशः गर्म-गर्म गो-मूत्र, गो-घृत एवं गो-दुग्ध का और फिर तीन दिन तक सिर्फ शुद्ध वायु का सेवन करने से शक्ति लाभ होता है। चिकित्सकों की दृष्टि में गो दुग्ध अति गुणकारी है। आयुर्वेद इसे 'सर्वव्याधिनाशक' मानता है। संत आसाराम बापू के अनुसार गाय के ताजा गोबर का एक चम्मच रस प्रसूता को पिला देने से शीघ्र सामान्य प्रसव होता है। इसमें आपरेशन की आवश्यकता नहीं पड़ती।

जननायक श्रीकृष्ण ने वायवीय देवता इन्द्र को रूष्टकर गोवर्धन पूजा आरम्भ करायी। 'गौ-चारण' में 'चरन्त' ध्वनि वन-वन,जंगल-जंगल घूमने, भटकने का संकेत कराती है, इसलिए ऋग्वेद में घूमने-फिरने वाले कृष्ण को ऋग्वेद में 'चरन्त', विष्णु को 'गोप' और ब्रजभूमि को 'गोपति' कहा गया। यहाँ एक बात बड़ी विरोधाभासपूर्ण लगती है कि वर्षा के देवता इन्द्र को रूष्ट कर गौ जीवन के आधार चारागाह में हरियाली की आशा कैसे की गयी? संभव तो यह जान पड़ता है कि ब्रजवासियों ने प्रकृति के रहस्य को भली-भाँति समझ और धरती को अधिक से अधिक हरा भरा रखने के लिए वायवीय देवता इन्द्र की अंधविश्वासपूर्ण भक्ति के बजाय जंगलों एवं वनों के संरक्षण पर अधिक ध्यान दिया होगा जिससे वर्षा संभव है। पौराणिक अनुश्रुतियों में श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण करने सम्बन्धी एक अंधविश्वासपूर्ण बात मिलती है, जबकि वास्तविकता यह जान पड़ती है कि इन्द्र की वर्षा से बचाव के लिए श्रीकृष्ण ब्रजवासियों तथा गौवों सहित गोवर्धन पहाड़ी की गुफा में घूस गये होंगे, क्योंकि महाकवि कालिदास के 'रघुवंश' (६/५१) और मध्यकालीन कवि जायसी की नवोपलब्ध कृति 'कन्हावत' (९७/८) से पता चलता है कि इस पहाड़ी मे गुफा या कन्दरा थी और श्रीकृष्ण अपने साथियों एवं गौवों को लेकर उसी में घूस गये थे। इस पहाड़ी के आस-पास गो चारण के लिए उत्तम चारागाह थी, जिसमें गौवों का पोषण एवं संवर्धन होता था, इ सीलिए इस पहाड़ी का नाम गोवर्धन पड़ा।

मुख्य बात यह है कि जिन जननायक को चरवाही के साथ-साथ राजनीति एवं धर्म प्रचार का भी कार्य संभालना होता था, उन्हें अगर भैंस जैसी अल्हड़ एवं आलसी पशु से पाला पड़ गया होता, तब तो वे इतिहास-पुरूष बनने से वंचित ही रह गये होते। गाय हमारे स्वास्थ्य तथा आर्थिक उन्नति का आधार है। भारतीय संस्कृति में उसे देवी एवं माता कहकर पुकारा गया है। पुराणों ने उसे जीवन-संसार रूपी सागर को पार लगाने वाली कहा। पशुपालन अथवा वेदिकयुग में गौ की इतनी महत्ता थी कि गो शब्द से अनेक अर्थ वाले शब्द ढल गये। गौ के स्थान को गोष्ठ 'नि गावो गोष्ठे' (ऋ१/१९१/४), युद्ध के लिए 'गविष्ठ', 'गेसू', 'गव्यत', 'गव्यु', 'गवेषण', 'गोकर्मन', नातेदारी की इकाई के लिए 'गोत्र', आदि शब्द भी बने। गो वृद्धि के लिए पाले जाने वाले सांड़ को गवला अथवा गौरी कहा गया। आज भी भोजपुरी में पशुओं के झुण्ड के लिए 'गवत', पशु झुण्ड को हरकाने के काम आने वाले लाठी या छड़ी के लिए 'गोजी'; दयाद, नातेदारी के लिए 'गोतिन', समय की माप के लिए 'गार्हआ', गोपालक के लिए 'गुवार' या 'ग्वाल', जलवान के लिए 'गोहरा', 'गोईठा' तथा किसी भी पशुमाल के लिए 'गोबर' आदि शब्द भी प्रचलित हैं, जो परम्परागत गोचारी एवं कृषक-जीवन के ही द्योतक हैं। इ ससे जान पड़ता है कि भारतीय जीवन में वैदिक काल से लेकर अब तक 'गाय' को विशेष स्थान प्राप्त रहा है।

ऐसी बात नहीं है कि भारतीय कृषक जीवन में भैंस का पालन होता ही नहीं था। 'ऋग्वेद' में गाय के अतिरिक्त 'भैंस'-महिषेवाव गच्छथः' (८.३५.७) तथा 'बकरी' -'अजां सूरिनं धातवे' (१.१२६.७), भी पाले जाने का उल्लेख मिलता है। कौटिल्यकाल में भैंस पालक को 'पिण्डारक' कहा जाता था और गाय पालक को 'गोपालक'-'गोपालक पिण्डारक दोहक मन्थक लुब्धकाः'। स्पष्ट है कि व्यवसाय की दृष्टि से गोपालक एवं पिण्डारक में अन्तर था। कौटिल्य की राज्य व्यवस्था में तहसीलदार, पटवारी अथवा कर्मचारी के पद पर, जिनके ऊपर ग्रामीण सम्पत्ति तथा जनसमुदाय के निरीक्षण तथा सुरक्षा की जिम्मेदारी होती थी, गोपाल ही रखे जाते थे, पिण्डारक नहीं। संभवतः समाज को इनके आचरण एवं व्यवहार का कटु

Content given by BHU, Varanasi

Copyright © Banaras Hindu University- All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

अनुभव हो चुका था। अतः शुरूसे ही गाय एवं गोपाल को सामाजिक सम्मान मिलता रहा है। आज भी दक्षिणी तथा पश्चिमी भारत में आभीरों (अहीरों) को कहीं-कहीं पिण्डारक ही कहा जाता है।

Content given by BHU, Varanasi

Copyright © Banaras Hindu University- All rights reserved. No part of this may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.